वेदोऽखिलोधर्ममूलम्

ऋग्वेद
यजुर्वेद
सामवेद
अथर्ववेद

वेद प्रकाश

मासिक पत्र (6-7 प्रतिमाह) मूल्यः ५ रुपये (३०/-वार्षिक) जनवरी २०१८

कुल पृष्ठ संख्या २०, वजनः 40 ग्राम
प्रकाशन तिथिः 4 जनवरी 2018

अन्तःपथ

भूमण्डल प्रचारक मेहता जैमिनी और उनके व्याख्यान *–राजेन्द्र 'जिज्ञासु' वेदन सदन,*	३ से ७
संस्कार पद्धति को ऋषि दयानन्द की देन *–डॉ० ज्वलन्त कुमार शास्त्री*	७ से १७
इतिहास की अमर गाथा	१७ से १८

'प्रार्थना और 'विश्वास'

दोनों ही अदृश्य हैं

परन्तु दोनों में इतनी 'ताकत' है

कि 'नामुमकिन' को 'मुमकिन' बना देते हैं!

एक बोध कथा

संस्कार क्या है...

एक राजा के पास सुन्दर घोड़ी थी। कई बार युद्ध में इस घोड़ी ने राजा के प्राण बचाये और घोड़ी राजा के लिए पूरी वफादार थी। कुछ दिनों के बाद इस घोड़ी ने एक बच्चे को जन्म दिया। बच्चा काना पैदा हुआ, पर शरीर हृष्ट-पुष्ट व सुडौल था।

बच्चा बड़ा हुआ। बच्चे ने माँ से पूछा: माँ मैं बहुत बलवान हूँ, पर काना हूँ...यह कैसे हो गया। इस पर घोड़ी बोली: बेटा जब में गर्भवती थी, तू पेट में था; तब राजा ने मेरे ऊपर सवारी करते समय मुझे एक कोड़ा मार दिया। इस कारण तू काना हो गया।

यह बात सुनकर बच्चे को राजा पर गुस्सा आया और माँ से बोला: माँ मैं इसका बदला लूँगा।

माँ ने कहा: राजा ने हमारा पालन-पोषण किया है, तू जो स्वस्थ है, सुन्दर है, उसी के पोषण से तो है। यदि राजा को एक बार गुस्सा आ गया तो इसका अर्थ यह नहीं है कि हम उसे क्षति पहुँचायें, पर उस बच्चे के समझ में कुछ नहीं आया, उसने मन ही मन राजा से बदला लेने की सोच ली।

एक दिन यह मौका घोड़े को मिल गया। राजा उसे युद्ध पर ले गया। युद्ध लड़ते-लड़ते राजा एक जगह घायल हो गया, घोड़ा उसे तुरन्त उठाकर वापिस महल ले आया।

इस पर घोड़े को ताज्जुब हुआ और माँ से पूछा: माँ! आज राजा से बदला लेने का अच्छा मौका था, पर युद्ध के मैदान में बदला लेने का ख्याल ही नहीं आया और न ही ले पाया। मन ने गवाही नहीं दी...इस पर घोड़ी हँस कर बोली: बेटा तेरे खून में और तेरे संस्कार में धोखा है ही नहीं, तू जानकर तो धोखा दे ही नहीं सकता है।

तुझसे नमक हरामी हो नहीं सकती, क्योंकि तेरी नस्ल में तेरी माँ का ही तो अंश है।

वाकई...यह सत्य है कि जैसे हमारे संस्कार होते हैं, वैसा ही हमारे मन का व्यवहार होता है। हमारे पारिवारिक-संस्कार अवचेतन मस्तिष्क में गहरे बैठ जाते हैं, माता-पिता जिस संस्कार के होते हैं, उनके बच्चे भी उसी संस्कारों को लेकर पैदा होते हैं।

हमारे कर्म ही 'संस्कार' बनते हैं और संस्कार ही प्रारब्धं का रूप लेते हैं। यदि हम कर्मों को सही व बेहतर दिशा दे दें तो संस्कार अच्छे बनेंगे और संस्कार अच्छे बनेंगे। फिर जो प्रारब्ध का फल बनेगा, वह मीठा व स्वादिष्ट होगा।

अत: हमें प्रतिदिन कोशिश करनी होगी कि हमसे जानबूझकर कोई धोखा ना हो, गलत काम ना हो और हम किसी के साथ कोई भी धोखा ना करें।, बस, इसी से ही स्थिति अपने आप ठीक होती जायेगी!! और हर परिस्तिथि में प्रभु की शरण ना छोड़ें तो अपने आप सब अनुकूल हो जाएगा!!!

वेदप्रकाश

वेदप्रकाश

संस्थापक : **स्वर्गीय श्री गोविन्दराम हासानन्द**

वर्ष ६७ अंक ६ वार्षिक मूल्य : तीस रुपये, एक प्रति ५ रुपये, जनवरी, २०१८

सम्पा० **अजयकुमार** पूर्व सम्पादक : स्व० **स्वामी जगदीश्वरानन्द सरस्वती**

भूमण्डल प्रचारक मेहता जैमिनि और उनके व्याख्यान

–राजेन्द्र 'जिज्ञासु'

वेद सदन, अबोहर-152116

मेरा अब किसी पुस्तक का अनुवाद करने का कोई विचार नहीं था। अकस्मात् कुछ दिन पूर्व स्वामी सम्पूर्णानन्द जी ने नई सड़क दिल्ली में चल भाव पर मेहता जैमिनि जी के किसी व्याख्यान और व्याख्यानों की बात छेड़ दी। मैं समझ गया कि आप गोविन्दराम हासानन्द की दुकान से बोल रहे हैं। थोड़े समय पश्चात् मन में जोश आया और एकदम निश्चय कर लिया कि अजय जी के लिये मेहता जी के अनुपम कुछ व्याख्यानों का उर्दू से हिन्दी अनुवाद तथा सम्पादन करके अजय जी को प्रकाशनार्थ सौंप दूँ।

बस फिर क्या, अजय जी को सूचना देकर कुछ ही घण्टों में मैंने इस कार्यहेतु लेखनी उठा ली। मेरे पास सवा सौ वर्ष पुराने पत्रों के ऐसे अंक हैं जिनमें उनके लेख छपते रहे। इस लेख में मेहता जी के लेखों की विविधता तथा विशेषताओं एवं उनके व्याख्यानों की लोकप्रियता पर तो लिखा ही जावेगा, इस लेख के आरम्भ में तथा समाप्ति पर उनके जीवन पर भी संक्षेप से कुछ लिखा जावेगा।

आर्यसमाज के विरक्तशिरोमणि संन्यासी और इतिहासज्ञ स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी ने लिखा है कि आर्यसमाज के किसी भी दूसरे मिशनरी ने धर्म प्रचारार्थ इतना भ्रमण नहीं किया जितना कि मेहता जैमिनि जी ने। दूसरी बात यह लिखी है कि उन्हें संसार में कहीं भी किसी आर्यसमाज का पता लग जाने या कहीं एक भी हिन्दू के होने की जानकारी मिल जाने पर आप बिना किसी की सहायता से वहाँ पहुँच जाते थे। जाति रक्षा व धर्म प्रचार की यह लगन आपको पं० लेखराम जी तथा पं० गुरुदत्त जी से घुट्टी में प्राप्त हुई।

आपकी स्मरणशक्ति असाधारण थी। इस समय श्री पं० ओ३म् प्रकाश जी वर्मा तथा इन पंक्तियों का लेखक ही उनकी चमत्कारी स्मरण शक्ति के कई रोचक संस्मरण सुना सकते हैं। एक प्रसंग देकर उनके व्याख्यानों का विषय

लेंगे। जनवरी 1956 की घटना है। आप कादियाँ पधारे। मुझे पूछा लाल मलमल की प्रकृति कैसी है? लाल मलमल ऋषि जी के काल के आर्यसमाजी थे। मैंने कहा कि दो-तीन वर्ष पूर्व आप चल बसे। यह सुनते ही आपको याद आ गया, "आपने नाभा में भी मुझे कहा था कि उनके निधन को दो तीन वर्ष हो गये।"

उनका यह कथन ठीक था। मुझे भी याद आ गया कि मैंने 1954 में उन्हें नाभा में ऐसा ही कहा था।

ऐसी विलक्षण स्मरण शक्ति वाले विद्वान्, घुमक्कड़ और कर्मठ मिशनरी के व्याख्यानों की विशेषताओं की पाठक कल्पना कर सकते हैं।

वे किसी भी विषय पर बिना पूर्व सूचना के, बिना तैयारी के अत्यन्त रोचक व ओजपूर्ण बोलने में समर्थ थे। वे ज्ञान का भण्डार थे।

उनके व्याख्यान बीस बार भी सुनने वाले श्रोता 21वीं बार सुनकर भी ऊबते नहीं थे। उनके व्याख्यानों की रंगत ही न्यारी होती थी। व्याख्यान खोजपूर्ण तथा प्रमाणों से परिपूर्ण होते थे परन्तु जनसाधारण (Masses) तथा विचारशील, उच्च शिक्षित (Classes) को बाँध लेते थे। सब प्रकार के श्रोता उन्हें सुरुचि से सुना करते थे।

विश्व के सब महाद्वीपों में प्रचारार्थ भ्रमण करने वाले इस विश्व यात्री के यात्रा संस्करण सुन-सुनकर श्रोताओं का जी नहीं भरता था।

आपने महर्षि दयानन्द जी के दर्शन तो किये नहीं थे परन्तु ला० साईंदासजी, पं० गुरुदत्त, पं० लेखराम सबकी छत्रछाया में समाज सेवा का आपको सौभाग्य प्राप्त रहा। स्वामी श्रद्धानन्द आदि सब नेताओं के साथ आपने कार्य किया। छोटे-छोटे ग्रामों में तो प्रचारार्थ गये ही देश और विश्व के सब बड़े-बड़े नगरों में वैदिक नाद बजाया।

आर्यसमाज के इतिहास के असंख्य रोचक और महत्त्वपूर्ण संस्करण आपको कण्ठाग्र थे। इतने संस्करण केवल स्वामी स्वतन्त्रानन्द महाराज ही सुना सकते थे। अपवाद रूप में ही संस्मरण सुनाते हुये व लिखते हुये उनसे चूक होती थी।

अब उनके व्याख्यानों की विशेषताओं की कुछ चर्चा करते हैं। उनकी शैली ऐसी अनूठी थी कि एक बार माननीय शरर जी ने मेरा व्याख्यान सुनकर कहा, "आचार्य रामदेव जी और वक्ता जैमिनि जी की रंगत में आप तो कभी-कभी बोलते हैं। उनकी ज्ञान प्रसूता प्रमाण परिपूर्ण शैली से बोलने वाले अनेक वक्ता हमारे पास होने चाहिएं।"

मैंने सन् 1946 में अपनी आयु के 16वें वर्ष में उनका पहला व्याख्यान सुना था। आज 72 वर्ष पश्चात् भी वह व्याख्यान मुझे पूरा याद है। उनकी अमिट छाप का यह एक ज्वलंत प्रमाण है।

आपने शास्त्रार्थ किये, लिखित शास्त्रार्थ भी किये और मौखिक भी किये। उनके एक ही व्याख्यान में देश-विदेश के बीस-पचीस लेखकों के नाम तथा पुस्तकों के प्रमाण तो होते ही थे। उनका स्वाध्याय कितना व्यापक और गम्भीर था वर्तमान में इसकी उपमा के लिये कोई वक्ता और विद्वान् नहीं है।

आप अखबारी शैली के व्याख्यान नहीं देते थे। वेद, उपनिषद्, दर्शन, सत्यार्थप्रकाश, ऋषि जीवन, ऋषि का पत्र व्यवहार तथा आर्यसमाज के किसी मूल सिद्धान्त यथा वैदिक धर्म मुझे क्यों प्यारा है, पुनर्जन्म, कर्मफल, सन्ध्योपासना, हवन, यज्ञ, शाकाहार, त्रैतवाद, वेद का आर्विभाव, आत्मा परमात्मा का सम्बन्ध, वेदोक्त ईश्वर का स्वरूप, ईश्वर की दया व न्याय, क्या ईश्वर पाप क्षमा करता है, आदि विषयों को लेकर आप व्याख्यान दिया करते थे।

उनको दिन में तीन-चार बार भी बोलने के लिये कहा जावे तो वे कभी न नहीं करते थे। सारा दिन प्रचार करते हुए, लिखते हुये उन्हें आनन्द आता था। कोई व्यक्ति शंका समाधान करने आये तो उन्हें अपार प्रसन्नता होती थी।

आपने अनेक पुस्तकें लिखीं जिनमें 5-6 अंग्रेजी में थी। शेष उर्दू में लिखी गईं। कुछ पुस्तकों का हिन्दी अनुवाद भी छपा। उनके व्याख्यानों का एक संग्रह 'ज्ञान भण्डार' के नाम से हिन्दी में भी छपा था। लगभग सब पुस्तकें उनके जीवन काल में ही एक से अधिक बार छपीं।

सब पुस्तकें अखबारी कागज पर छपीं। विदेशों में उनके प्रचार का इतिहास अपेक्षाकृत कुछ अच्छे कागज पर छपा।

विदेशों में आर्यसमाज के प्रचार के इतिहास पर केवल मेहता जैमिनि जी तथा स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी की एक-एक पुस्तक ही ठोस, रोचक व प्रामाणिक हैं।

मेहता जी पं० गुरुदत्त विद्यार्थी, पं० लेखराम जी, महात्मा नारायण स्वामीजी, स्वामी श्रद्धानन्द जी, स्वामी स्वतन्त्रानन्द आदि महापुरुषों के पश्चात् पं० चमूपति जी, पं० गंगाप्रसाद चीफ जज, पं० गंगाप्रसाद उपाध्याय, स्वामी वेदानन्द जी, पं० रामचन्द्र जी देहलवी और पं० शान्ति प्रकाश जी के विद्या पाण्डित्य की बहुत प्रशंसा किया करते थे। विदेशों में प्रचार करने वाले विद्वानों में स्वामी विज्ञानानन्द जी, पं० अयोध्याप्रसाद जी, डॉ० बालकृष्ण जी

और पं० चमूपति जी की उपलब्धियों पर गौरव किया करते थे। उपदेशकों प्रचारकों के लिये पं० लेखराम जी तथा स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी के जीवन को आदर्श मानते थे।

विदेशों में आर्य धर्म व संस्कृति के प्रभाव पर जैसे तथ्यपूर्ण आपके व्याख्यान व लेख होते थे दूसरा कोई और न तो वैसा बोलता देखा। न उनके स्तर के लेख किसी के सामने आये।

जैसा कि लेख के आरम्भ में कहा था लेख की समाप्ति उनके जीवन की कुछ घटनायें देकर करेंगे। उनका जीवन समयबद्ध था। खान पान में बहुत संयमी थे। चाय, काफी, कोल्ड ड्रिंक का स्वाद तक नहीं जानते थे। लाल मिर्च तो क्या वे काली मिर्च का स्वाद भी नहीं जानते। एक बार किसी घर से उनके लिये भोजन भेजा गया। सब्जी में काली मिर्ची का प्रयोग किया गया था। चखते ही पता चला गया। आपने भोजन ही नहीं किया। न ही क्रोधित हुये। घर की देवी ने तो बड़ी श्रद्धा से भोजन बनाकर भेजा। यह घटना मेरे सामने कादियाँ में घटी। अज्ञानवश हो गई। शांति से बोले, अब रात्रि को भोजन करूँगा।

आयु 90 से कुछ कम पाई परन्तु अन्त समय तक प्रचार करते रहे। अफ्रीका में ज्वर होने पर कोनीन की मात्रा अधिक दी गई। इससे श्रवण शक्ति चली गई। इसके कोई 35 वर्ष पश्चात् तक प्रचार में सक्रिय रहे। कानों की श्रवण शक्ति न होने से कभी दु:खी नहीं हुए।

उनकी सन्तान सुयोग्य व प्रतिष्ठित थी। सब आदर करते थे। परिवार से कतई मोह नहीं था। तब एम.एससी करके कोई एम.बी.बी.एस नहीं करता था। इनके पुत्र डॉ० प्रकाश चन्द्र ही देश भर में इस योग्यता के डॉक्टर थे। बहुत आग्रह करने पर कभी उनके नगर या आस-पास प्रचारार्थ जायें तो उनके आग्रह पर उनके पास भी रुक जाते थे।

गिदड़बाहा मण्डी पंजाब में आपका बहुत सम्मान था। एक बार संयोग से डॉ० प्रकाश चन्द्र जी वहीं कार्यरत थे। नगर के सबसे बड़े सरकारी अधिकारी तथा सबसे योग्य सुपठित व्यक्ति भी आप ही थे। नगर निवासी समझते थे कि आप पुत्र के पास ही रुकेंगे। डॉक्टर जी प्रात: सायं दोनों समय सत्संग में आया करते थे परन्तु स्वामीजी पुत्र के घर नहीं ठहरे। श्री पं० ओ३म् प्रकाश जी वर्मा आपके साथ थे। आप भी अपने समाज के इस विरक्त संन्यासी की दृढ़ता को देख कर दंग रह गये। आज भी गिदड़बाहा में इस घटना की यदा-कदा चर्चा होती रहती है।

आप चलते-चलते चल बसे। कोई दु:ख कष्ट नहीं पाया। हिन्दी रक्षा सत्याग्रह में जत्था लेकर जा रहे थे। आर्यसमाज लक्ष्मणसर अमृतसर में आपका अकस्मात् शान्तिपूर्वक निधन हो गया।

आपने अपने जीवन में देश-विदेश के सहस्रों व्यक्तियों को वैदिक-धर्मी बनाया। आर्यसमाज के सब करणीय कार्य किये। प्रचार किया, शुद्धि की, लेखन कार्य किया, शास्त्रार्थ किये, साहित्य सृजन किया। सत्यार्थप्रकाश का फारसी में अनुवाद भी किया। परन्तु वह कभी छपा ही नहीं। आप कई पत्रों के सम्पादक भी रहे। 'सद्धर्म प्रचारक' के भी कुछ मास तक सम्पादक पद पर आसीन रहे।

स्वामी वेदानन्द जी महाराज आपकी ऋषि भक्ति, समर्पणभाव, सिद्धान्तनिष्ठा के कारण आपका बहुत आदर करते थे। एक बार खेड़ा खुर्द से चलकर दिल्ली करोल बाग समाज में आपके दर्शन करने पहुँच गये।

आपके परिवार में सन्तान ने जाति बंधन तोड़कर विवाह किये। यह कोई छोटी सी बात नहीं। आर्यसमाज के इस निर्माता, गुणी, ज्ञानी महात्मा के अनुपम व्याख्यानों का यह संग्रह आर्यसमाज स्थापना दिवस तक छपने चला जावेगा।

संस्कार पद्धति को ऋषि दयानन्द की देन

–डॉ० ज्वलन्त कुमार शास्त्री

आधुनिक युग के वैदिक ऋषि स्वामी दयानन्द सरस्वती अपने प्रसिद्ध एक सस्कारविधि: में संस्कार महत्त्व को इस प्रकार वर्णित करते हैं–"शरीर और आत्मा की विशुद्धि के लिए परम आदरपूर्वक वेदादिशास्त्रों के सिद्धान्तों को ध्यान में रखकर आर्यों के ऐतिह्य (इतिहास) को भी विचारकर विद्वानों को संस्कार का आयोजन करने के लिये उद्यम करना चाहिए। संस्कारों से संस्कृत जो भी व्यक्ति या वस्तु होगी उसे मेध्य या पवित्र कहा जाता है। इसी प्रकार लोक (संसार) में जो भी व्यक्ति या वस्तु असंस्कृत हो उसे अमेध्य या अपवित्र माना जाता है। यह संस्कार शिक्षा और औषधि के द्वारा किया जाता है जिससे नित्य ही सर्वथा सुखों की वृद्धि होती है।"

बालक को संस्कारित करना नित्यप्रति की प्रक्रिया है, जिसमें सुशिक्षा का महत्त्वपूर्ण स्थान है। उसमें भोजन-छान से लेकर शिष्टाचार, व्यवहार, सद्ज्ञान, सत्क्रिया और दार्शनिक-सैद्धान्तिक विचारों तक का परिग्रहण है। पुनरपि जीवन के विभिन्न मोड़ पर कुछ धार्मिक क्रियाकलाप का करना भी 'संस्कार'

कहलाता है, जिसे प्रथा, रीति-रिवाज भी कहते हैं, उन प्रथाओं की निष्पत्ति में केवल कर्मकाण्ड (Ritual) ही नहीं होता, उसमें सुशिक्षा और अर्थपूर्ण प्रयोजन भी निहित होता है।

संस्कारों की संख्या

भारतवर्ष में प्राचीन वैदिककाल से ही संस्कारों का प्रचलन रहा है। मनुस्मृति और वेदांग साहित्य के कल्पशास्त्र में बहुविध संस्कारों का वर्णन है। संस्कारों की संख्या भी न्यूनाधिक है। विस्तारप्रिय आर्यों (कतिपय गृह्यसूत्रकारों तथा निबन्धकारों) ने 48 अड़तालीस संस्कारों का उल्लेख किया है तो न्यूनतम 10 संस्कारों का भी विधान है। स्वामी दयानन्द सरस्वती 16 संस्कार मानते हैं। सोलह संस्कारों के निर्धारण में भी स्वामीजी की ऊहा और औचित्य दोनों के दर्शन होते हैं। मनुस्मृति तथा पारस्कर गृह्यसूत्र में 14 चौदह, आश्वलायन तथा मानव गृह्यसूत्र में 13 तेरह, कौषीतकि (शांखायन), आपस्तम्ब तथा गोभिलगृह्यसूत्र में 12 बारह, गोपथ ब्राह्मण तथा जैमिनीय गृह्यसूत्र में 11 ग्यारह तथा हिरण्येकेशीय गृह्यसूत्र में 10 दस संस्कारों का वर्णन है।

किसी गृह्यसूत्रकार ने वानप्रस्थ तथा संन्यास को संस्कारों में परिगणित नहीं किया है। इसका कारण यह है कि गृह्यसूत्र गृहस्थ आश्रमी द्वारा किये जाने वाले संस्कारों का वर्णन करते हैं। वानप्रस्थ और संन्यास का गृह्यकर्मों से कोई सम्बन्ध नहीं है, अतः इनका विधान गृह्यसूत्रों में नहीं मिलता। ब्राह्मण, आरण्यक तथा स्मृति-साहित्य में वानप्रस्थ और संन्यास आश्रम का और उनके कर्त्तव्यों का विशद वर्णन है। स्वामी जी ने ये दोनों संस्कार इन्हीं ग्रन्थों के आश्रय से लिये हैं। इसके साथ ही यह भी ध्यातव्य है कि ब्रह्मचर्य आश्रम में प्रवेश वेदारम्भ संस्कार द्वारा होता है तथा गृहस्थ आश्रम में प्रवेश विवाह-संस्कार द्वारा होता है। अतः वानप्रस्थ और संन्यास आश्रम में प्रवेश के समय क्रमशः वानप्रस्थ और संन्यास संस्कार का विधान करना भी समुचित प्रतीत होता है। गृह्यसूत्रों में प्रथम संस्कार के रूप में विवाह संस्कार तथा अन्तिम संस्कार समावर्त्तन संस्कार को माना गया है। आश्वलायन तथा कौशिक गृह्यसूत्र को छोड़कर अन्त्येष्टि कर्म (संस्कार) का भी कहीं वर्णन नहीं है। स्वामीजी संस्कारों का प्रारम्भ गर्भाधान से करते हैं तथा समापन अन्त्येष्टि संस्कार के साथ। इसका कारण संभवतः यह है कि स्वामी जी की दृष्टि में संस्कारों का सम्बन्ध मनुष्य के जन्म से लेकर मृत्यु पर्यन्त उसके सम्पूर्ण जीवनकाल से है। जीवात्मा का शरीर के साथ संयोग का नाम जन्म और

जीवात्मा का शरीर से वियोग का नाम मृत्यु है। अतः जीवात्मा का शरीर से संयोग के काल को गर्भाधान के नाम से प्रथम संस्कार तथा जीवात्मा का शरीर से वियोग (मृत्यु) के अनन्तर मृत शरीर का सम्मानपूर्वक और्ध्वदैहिक कर्म अन्त्येष्टि संस्कार अन्तिम सोलहवाँ संस्कार है। स्वामी जी के इस विचार की पुष्टि मनुस्मृति के इस वचन से भी होती है, जिसमें यह कहा गया है कि "गर्भाधान से अन्त्येष्टि पर्यन्त संस्कारों का वेदमन्त्रों द्वारा विधान वर्णित है।" अतः स्वामी जी ने गर्भाधान से मृत्यु पर्यन्त 16 सोलह संस्कारों की संख्या को मान्यता प्रदान की है।

उपरिवर्णित गृह्यसूत्रों तथा मनुस्मृति में उल्लिखित प्रायः सभी संस्कारों को स्वामीजी ने स्वीकार कर लिया है। केशान्त या गोदान नामक संस्कार को स्वामीजी ने छोड़ दिया है जो वेदारम्भ के पश्चात् तथा समावर्त्तन से पूर्व किया जाता है। विचार करने पर यह उचित भी प्रतीत होता है। क्योंकि यह संस्कार मनुस्मृति के अनुसार ब्राह्मण के 16 सोलहवें वर्ष में, क्षत्रिय के बाइसवें तथा वैश्य के 24वें वर्ष में किया जाता है। केशान्त संस्कार की विधियाँ चूड़ाकरण या मुण्डन संस्कार के समान ही हैं, अन्तर केवल इतना ही है कि चूड़ाकर्म (मुण्डन) में सिर के बाल मूँड़े जाते हैं और केशान्त में सिर, दाढ़ी, मूँछ और कक्ष आदि के सभी बाल मूँड़े जाते हैं। केशान्त के लिए 'गोदान' शब्द का प्रयोग पारिभाषिक है। 'गोदान' शब्द का अर्थ पारस्कर गृह्यसूत्र के टीकाकार हरिहर और गदाधर के अनुसार 'शिरःप्रदेश का केशसमूह' है।

इस संस्कार की दक्षिणा में आचार्य को गोदान दिया जाता है। इस संस्कार के सम्बन्ध में सबसे विचित्र बात यह कही गई है कि इस संस्कार के बाद एक वर्ष तक ब्रह्मचर्य का पालन करें और केशवपन न कराये। वैकल्पिक स्थिति यह है कि बारह दिन अथवा छह दिन अथवा तीन दिन तक तो ब्रह्मचर्य पालन अवश्य करें।

वेदारम्भ संस्कार के पश्चात् ब्रह्मचारी आचार्यकुल में विद्याध्ययन पर्यन्त निवास करता है। विद्या समाप्ति के बाद समावर्तन संस्कार किया जाता है। ब्रह्मचर्य आश्रम में सुविधानुसार जटाधारी या मुण्डित रहने का विधान है। साथ ही ब्रह्मचर्य-आश्रम में रहते समय पूर्ण विद्याप्राप्ति पर्यन्त ब्रह्मचर्य व्रत पालन का निर्देश है। ऐसी स्थिति में मध्य में केशान्त संस्कार का विधान और उसके बाद एक वर्ष, छह माह, बारह दिन, छह दिन या तीन दिन तक ब्रह्मचर्य पालन का क्या औचित्य है? अतः स्वामीजी ने इस संस्कार का विधान

अनुचित समझकर इसे संस्कारों में स्थान नहीं दिया। इसी प्रकार कौषीतकि (शांखायन) गृह्यसूत्र में विवेचित 'गर्भरक्षण' संस्कार (जिसे पुंसवन के बाद चतुर्थमास में किया जाता है) की भी कोई खास उपयोगिता नहीं है, इसका कार्य पुंसवन तथा सीमान्तोन्नयन संस्कार के अंतर्गत आ जाता है। 1932 वि० (1875 ई०) से लेकर 2071 वि० सं० (2015 ई०) तक 140 वर्षों की अवधि में ऋषि दयानन्द विरचित 'संस्कारविधिः' का इतना व्यापक प्रचार-प्रसार हुआ है कि उसके प्रभाव से जनसामान्य से लेकर विद्वज्जगत् तक संस्कारों की संख्या सोलह ही मानी जा रही है। प्रान्तीय तथा केन्द्रीय सरकार की प्रतियोगी परीक्षाओं में भी संस्कारों की संख्या विषयक प्रश्न का उत्तर सोलह ही समुचित माना गया है।

स्वामी जी को संस्कारों की विधि वेदानुकूल, बुद्धि-तर्कयुक्त, शिष्टजनों के सदाचार से समन्वित बनाने के लिए बहुत ही परिश्रम करना पड़ा है। 'संस्कारविधिः' के अनुशीलन तथा गृह्यसूत्रों से उसका तुलनात्मक अध्ययन करने से स्वामी जी ऊहा, पाण्डित्य और आर्ष प्रतिभा पदे-पदे दृष्टिगोचर होती हैं।

स्वामीजी ने सब संस्कारों में समान रूप से किये जाने वाले विधि भाग को संस्कारविधिः के प्रारम्भ में रखा है उसका नाम 'सामान्यप्रकरण' रखा है, जिससे इन विधियों को प्रति-संस्कार में बार-बार पुनरावृत्ति न करनी पड़े। प्रत्येक संस्कार के आरम्भ में तत्तत् संस्कार के उपदेशार्थ वेदादि आर्ष ग्रन्थों के प्रमाण-वचन तथा उस-उस संस्कार के प्रयोजनों को लिखा गया है। उसके पश्चात् उस संस्कार की कर्त्तव्यविधि का क्रमपूर्वक वर्णन करने के बाद, उस संस्कार के शेष विषय जो अग्रिम संस्कार से पूर्व तक करने चाहिएं, उन्हें लिखा है। इस प्रकार तीन स्तर प्रत्येक संस्कार के बनते हैं।

संस्कारविधि की एक बड़ी विशेषता यह है कि विधिभाग में वेद तथा आर्षग्रन्थों के मन्त्र ही विनियुक्त किये गये हैं लौकिक वाक्यों का तिरस्कार किया गया है। जैसे-शास्त्रीय मर्यादा है-'आचान्तेन कर्म कर्त्तव्यम्' (मीमांसाभाष्य 1/3/5 में उद्धत)। अर्थात् आचमन से यज्ञ कर्म का प्रारम्भ करना चाहिए।

स्वामी जी ने आश्वलायन गृह्यसूत्र में उल्लिखित (1/24/12, 21, 22) "ओम् अमृतोपस्तरणमसि स्वाहा। ओम! अमृता-पिधानमसि स्वाहा। ओं सत्यं यशः श्रीर्मयि श्रीः श्रयतां स्वाहा।" इन तीन मन्त्रों को आचमन में विनियुक्त किया है। यह रूपसमुद्र विनियोग है। 'अमृत' पद जल तथा परमेश्वर का

वाचक है। इसके स्थान पर बोला जाने वाला 'ओं केशवाय नमः' प्रभृति लौकिक संस्कृत वाक्यों की क्या उपयोगिता है? उसके अर्थ का आचमन कर्म से कोई दूर का भी सम्बन्ध नहीं है। यह पौराणिक पद्धति किस प्रकार 'सनातन पद्धति' हो सकती है?

स्वामी जी की 'संस्कारविधिः' में एक प्रकरण और है जिसका उल्लेख किसी गृह्यसूत्रादि संस्कारपरक ग्रन्थ में नहीं है वह प्रकरण है–

"अथेश्वरस्तुतिप्रार्थनोपासनामन्त्राः"। इसके अंतर्गत स्वामीजी ने परमेश्वर की स्तुति-प्रार्थना और उपासना विषयक 8 मन्त्रों को संकलित किया है और उसकी अतिशय भक्तिपरक, आह्लादक तथा सामान्यजनों के लिये अर्थगम्य मनोरम व्याख्या की है। स्वामीजी सभी संस्कारों, यज्ञादि उत्सवों तथा पर्व आदि अवसरों पर इन मन्त्रों का पाठ तथा उसके गम्भीर अर्थों पर विचार करके परम पिता परमेश्वर का ध्यान और उपासना का विधान करते हैं। स्वामीजी के शब्द इस प्रकार हैं–"सब संस्कारों के आदि में निम्नलिखित मन्त्रों का पाठ और अर्थ द्वारा एक विद्वान् वा बुद्धिमान् पुरुष ईश्वर की स्तुति, प्रार्थना और उपासना स्थिरचित्त होकर परमात्मा में ध्यान लगाकर करे और सब लोग उसमें ध्यान लगाकर सुनें और विचारें।"

'संस्कारविधिः' की भूमिका का समापन स्वामीजी के शब्दों में इस प्रकार है–"जिस करके (अर्थात् संस्कारों को करने से) शरीर और आत्मा सुसंस्कृत होने से धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष को प्राप्त हो सकते हैं और सन्तान अत्यन्त योग्य होते हैं। इसलिए संस्कारों का करना सब मनुष्यों को अति उचित है।"

स्वामी दयानन्द और पुसंवन संस्कार

इस संदर्भ में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण लक्ष्य करने का तथ्य यह है कि प्राचीन गृह्यसूत्रकारों से पुसंवन संस्कार का प्रयोजन पुमान अर्थात् पुरुष के जन्म में माना है। किन्तु स्वामी दयानन्द सरस्वती के अनुसार इस संस्कार का प्रयोजन पूर्वाचार्यों में बिल्कुल ही भिन्न है। उनके अनुसार पुंसवन संस्कार का उद्देश्य पति के पुरुषत्व अर्थात् वीर्यलाभ से है। स्वामीजी की मान्यता है जब तक बालक का जन्म न हो जाय और जन्म के पश्चात् भी दो महीने न बीत जायें तब तक पति को ब्रह्मचर्य का पालन करना चाहिए और स्वप्न में भी वीर्य नाश न होने देना चाहिए। स्वामीजी ने पुंसवन संस्कार के प्रमाण में सामवेदीय मन्त्र ब्राह्मण (1/4/8-9), अथर्ववेद (6/11/1-3) के मन्त्रों को उद्धृत करने के बाद स्पष्टतः यह लिखा है–"इन मन्त्रों का यही अभिप्राय है

कि पुरुष को वीर्यवान् होना चाहिए।"

इससे यह भली-भाँति स्पष्ट है कि स्वामी दयानन्द स्त्री-पुरुष के भेदभाव के घोर विरोधी हैं। जब कि अन्य आचार्यों के अनुसार पुंसवन संस्कार का अर्थ पुत्र की कामना करना बालिकाओं के प्रति अन्याय तथा कन्या-जन्म को हेय दृष्टि से देखना है। जब संस्कारों का उद्देश्य सन्तानों को सुशिक्षित तथा सुसंस्कृत करना माना जाता है, फिर यह कैसा संस्कार हुआ कि जिसके द्वारा कन्या जन्म की इच्छा ही न की जाय (तब तो कन्याओं की शिक्षा का तो प्रश्न ही नहीं उठता)। स्वामी दयानन्द की क्रान्तिकारी मान्यता स्त्री के प्रति भेदभाव को जड़ मूल से मिटाती है।

सीमान्तोन्नयन संस्कार

शिशु उत्पन्न होने के पूर्व तथा गर्भाधान के पश्चात् किए जाने वाले संस्कारों में दो संस्कार (1) पुंसवन और (2) सीमान्तोन्नयन हैं। इन दोनों में भी सीमान्तोन्नयन अधिक महत्वपूर्ण हैं। इसका काल भी चौथे मास से आठवें मास तक है। सीमान्तोन्नयन का भाव और उद्देश्य गर्भस्थ बालक के चौथे महीने से लेकर आठवें महीने तक सम्पूर्ण कार्य-कलापों पर आधारित है। गर्भावस्था में बालक के अति-कोमल मन-मस्तिष्क पर सात्त्विक संस्कार डालने के लिए अनेक विधि-विधान आर्ष ग्रन्थों में पाये जाते हैं जिसमें मुख्यतः धर्मसूत्र, गृह्यसूत्र, मनुस्मृति तथा आयुर्वेदीय ग्रन्थों के निर्देश महत्त्वपूर्ण हैं। प्राचीन भारत के ऋषि-मुनियों के जीवन रामायण और महाभारत जैसे प्रसिद्ध महान् ऐतिहासिक काव्यों के अनेक आख्यान और कथानक गर्भावस्था के संस्कारों की महत्ता के प्रतिष्ठापक हैं।

सुश्रुत के अनुसार "जो गर्भिणी स्त्रियाँ विद्वान् और ब्राह्मणों का सत्संग करने वाली हैं, जो पतिव्रता और सदाचार से रहने वाली हैं उनकी सन्तान महागुणवान् होती है, यदि इनसे विपरीत आचरण वाली होंगी तो सन्तान भी साधारण होगी।"

सुश्रुत के इसी सिद्धान्त की पुष्टि महर्षि मनु ने भी की है–

"गर्भवती स्त्री जिस पदार्थ अथवा दृश्य को मन में बसा लेती है, उसकी जैसी आकृति होती है, उसी प्रकार की वह सन्तान उत्पन्न करती है। सन्तान को विशेष रीति से शुद्ध करने के लिए आवश्यक है कि स्त्रियों की रक्षा के पूर्ण प्रयत्न किये जायें।"

निष्क्रमण संस्कार

निष्क्रमण संस्कार में बालक के दक्षिण कान में मन्त्र जप करने का

विधान है। संस्कारों के सम्बन्ध में आकर ग्रन्थ पारस्कर गृह्यसूत्र का मत यह है कि यदि बालिका का निष्क्रमण संस्कार हो रहा हो तो उसके कान में जप आदि न करके बिना मन्त्र पाठ किए मौन होकर बालिका के सिर का स्पर्श करें।

निश्चय ही यह भेदभावपरक दृष्टिकोण है मध्यकाल में स्त्री का स्थान पुरुषों की अपेक्षा हीन होने के कारण स्त्री के संस्कारों में मन्त्र पाठ का निषेध मिलता है। स्वामी दयानन्द सरस्वती मध्यकालीन आचार्यों के इस भेदभाव परक दृष्टिकोण से सहमत नहीं हैं। उन्होंने निष्क्रमण संस्कार के इस स्थल पर अत्यन्त ही बुद्धिमानी का परिचय देकर क्रान्तिकारी धार्मिक संशोधन का कार्य किया। उनके अनुसार बालक और बालिका दोनों का संस्कार समान रूप से मन्त्र पाठ करते हुए प्रत्येक विधि को सम्पन्न करना है। स्वामीजी बालक के समान ही बालिका के भी दक्षिण और वाम कर्ण में मन्त्र जप का विधान मानते हैं। उन्होंने कान में जप के अनन्तर मौन होकर बालिक/बालिका के पिता द्वारा अपनी स्त्री (पत्नी) के सिर-स्पर्श का विधान किया है। इस प्रकार कर्मकाण्डों में समुचित संशोधन करने का मार्ग उन्होंने प्रशस्त किया है। अन्नप्राशन में मांस-भक्षण का अनौचित्य–

याज्ञिक पद्धति यह है कि जो यज्ञ में आहूत होता है, वही ऋत्विज् तथा यजमान खाते हैं। अन्नप्राशन संस्कार में स्थालीपाक खीर की आहुति दी जाती है। बालक को चरु ही खिलाना चाहिए। यदि कोई यह कहे कि 'अद्यते यत् तदन्नम्' जो खाया जाय वही अन्न है, श्रुति जिसका विधान करे वही भक्ष्य शास्त्रोक्त माना जाता है। वेदों में स्पष्टतः अन्न, दूध तथा फलों का रस ही भक्ष्य बताया गया है। कात्यायन गृह्यसूत्र में लिखा है–

चातुष्प्राश्यपचनवत् सर्वम्॥

अर्थात् सब कर्म चार ऋत्विजों के खाने योग्य भोजन विधि के समान सम्पन्न करें। क्योंकि यज्ञ में भी उसकी आहुति दी जाती है तथा ऋत्विज आदि भी उसे ही खाते हैं। यहाँ भी यज्ञ में घी, भात, खीर आदि की आहुति दी जाती है। अतः वही बालक को खिलाना उचित है।

चूड़ाकर्म के कर्मकाण्ड को नई दृष्टि

इस संस्कार में केशों को काटने से पहले श्वेत स्वाही (शल्यक) के तीन काँटों से केशों को तीन जगह पृथक्-पृथक् करके तीन-तीन नये कुशों को केशों के मध्य में रखा जाता है। स्वामी दयानन्द ने यहाँ पर श्वेत स्वाहवी

के (साही Porequpine) तीन काँटों के बदले युगानुरूप कंघा से केशों को सुधारने का विधान किया है। निश्चय ही पारस्कर गृह्यसूत्रादियों के समय में कंघा नहीं था और उनका कार्य स्याही के काँटों से लिया जाता था।

इसी प्रकार मुण्डन से पूर्व चारों ओर के सिर के बालों को दर्भ (कुश) सहित छुरे से काटा जाता था। स्वामीजी ने युगानुरूप छुरे के साथ-साथ विकल्प के रूप में कैंची से भी केश काटने का विधान किया है। इस प्रकार स्वामी जी ने अद्यतन प्रचलित कैंची से बाल काटने की रीति को मान्यता प्रदान की है। निश्चय ही गृह्यसूत्रों के रचनाकाल में कैंची और कंघे की उपलब्धता नहीं थी।

चूड़ाकर्म संस्कार के अन्त में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण कृत्य के सम्बन्ध में प्राचीन शास्त्रकारों की मान्यता थी कि मुण्डित केश को गोबर के पिण्ड में ढक कर गोशाला या तलैया (क्षुद्र जलाशय) अथवा जल के समीप रख दें। वर्तमान में अधिकांश हिन्दू गंगा आदि नदियों के तीर्थ पर बने हुए मन्दिरों में केशों का मुण्डन कराते हैं और उस मुण्डित केशों (बालों) को नदी में प्रवाहित करते हैं, किन्तु स्वामी दयानन्द सरस्वती मुण्डन के केशों को गोशाला, पोखर या नदी-जल के समीप यूँ ही बिखेरने या बहाने को अनुचित समझते हैं। उन्होंने 'संस्कारविधि:' में पर्यावरण-सुरक्षा की दृष्टि से इन केशों को जंगल में गड्ढा खोदकर उसमें डालकर ऊपर से मिट्टी से दबा देने का निर्देश किया है। आचार्यों के मतानुसार वैकल्पिक व्यवस्था में भी गोशाला, नदी या तालाब के किनारे भी इन केशादि को पूर्ववत् गाड़ने का ही विधान किया है। स्वामी दयानन्द के शब्द इस प्रकार हैं–"केश, दर्भ, शमीपत्र और गोबर को जंगल में ले जा गड्ढा खोद के उसमें सब डालकर ऊपर से मिट्टी से दबा देवे। अथवा गोशाला, नदी वा तालाब के किनारे पर उसी प्रकार केशादि को गाड़ देवें।"

कर्णवेध संस्कार

पारस्कर (कात्यायन) गृह्यसूत्र को छोड़कर अन्य गृह्यसूत्रों में कर्णवेध संस्कार का उल्लेख नहीं मिलता किन्तु कात्यायन गृह्यसूत्र के अतिरिक्त सुश्रुत नामक प्रसिद्ध आयुर्वेदीय ग्रन्थ में यह स्पष्ट लिखा है कि "रोग से रक्षा के लिए और आभूषण पहनने के लिए भी बालक-बालिका के कान बींधने चाहिएं।" सुश्रुत के दूसरे स्थल में भी कर्णवेध का औचित्य सिद्ध किया गया है। रोग से निवृत्ति का तात्पर्य यह है कि अण्डकोष वृद्धि के निवारण के लिए कर्णवेध करना चाहिए। वेद और मनुस्मृति में कानों में सोने का कुण्डल

धारण करने का उल्लेख मिलता है। दोनों कानों में केवल एक-एक छेद ही करना चाहिए। जो स्त्रियाँ अनेक छिद्र कराती हैं वह निरर्थक और हानिकारक है।

वानप्रस्थ आश्रम की नैतिक अवधारणा

तप-स्वाध्यायमय आध्यात्मिक जीवन–वैदिक संस्कृति में जीवन विषयक दो दृष्टियों-भोग तथा त्याग का समन्वय है। वैदिक जीवन दर्शन में न तो भोगवाद की प्रधानता है और न त्यागवाद की, अपितु भोग और त्याग का मणिकाञ्चन संयोग पाया जाता है। इसीलिए हमारे यहाँ पुरुषार्थ चार हैं–धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष। अर्थ और काम में भोग की प्रधानता है तो धर्म और मोक्ष, में त्याग की। अर्थात् आध्यात्मिक एवं भौतिक दोनों जीवन-दृष्टियों का यहाँ अद्‌भुत समन्वय पाया जाता है। हमें इसी दृष्टि से वैदिक संस्कारों (16 संस्कार) तथा आश्रमों (चारों आश्रमों) को देखना चाहिए। ब्रह्मचर्य, वानप्रस्थ और संन्यास आश्रम में अध्यात्मवाद, त्याग और वैराग्य की प्रधानता है। गृहस्थाश्रम में भोगवाद अवश्य है किन्तु वह भी धर्म से नियन्त्रित। वानप्रस्थ आश्रम में विशुद्ध रूप से तप, त्याग तथा स्वाध्यायमय आध्यात्मिक जीवन प्रधान है।

वानप्रस्थ आश्रम तथा अनिवार्य शिक्षा-भोगवाद तथा बेकारी के प्रश्न को हल करने के साथ-साथ वानप्रस्थ आश्रम एक और समस्या को हल कर सकता है। वह समस्या है अनिवार्य शिक्षा की। वानप्रस्थियों को आश्रम का गुरुकुल कहा जाएगा। इन आश्रमों में पढ़ाने वालों को कोई वेतन नहीं मिलेगा। फिर भी बिना वेतन लिए, बिना पढ़ाने की फीस लिए, बिना बालकों से खाने-पीने का खर्च लिए, बिना राज्य से किसी प्रकार की सहायता लिए बालकों की शिक्षा की पूरी-पूरी व्यवस्था अपने देश में चलेगी।

इस व्यवस्था का आधार वानप्रस्थ आश्रम यदि आजकल की अवस्था में निःशुल्क तथा अनिवार्य शिक्षा के इस कार्य को पूरा करने के लिए लाखों नहीं, करोड़ों रुपये की जरूरत है। वैदिक संस्कृति इस समस्या को वानप्रस्थाश्रम द्वारा हल कर लेती है।

आज भी हमारा विकासशील देश भारत सबको शिक्षा देने के लक्ष्य को वैदिक संस्कृति पर आधारित वानप्रस्थ आश्रम की जीवन पद्धति को अपनाकर बिना लाखों--करोड़ों खर्च किए पूरा कर सकता है।

संन्यास आश्रम का महत्त्व

संन्यासी का मुख्य कर्त्तव्य सत्योपदेश तथा परोपकार करना है। अतः

बिना पूर्ण विद्या के, धर्म और ईश्वर की निष्ठा से रहित तथा वैराग्य से हीन व्यक्ति यदि संन्यास ग्रहण करता है तो वह संसार का उपकार नहीं कर सकता। शरीर में सिर की आवश्यकता के समान आश्रमों में संन्यास आश्रम की आवश्यकता है। क्योंकि इसके बिना धर्म और विद्या की वृद्धि नहीं हो सकती। ब्रह्मचारी विद्या ग्रहण करते हैं, गृहस्थ गृहकार्यों में तत्पर रहता है, वानप्रस्थ का सम्बन्ध विशेषतया तपश्चर्या से होता है। अतः धर्म और विद्या की वृद्धि के लिए संन्यासी से इतर व्यक्तियों को अवकाश कम मिलता है।

संन्यासी जगत् के सम्मान से विष के तुल्य डरता रहे, और अमृत के समान अपमान की चाहना करता रहे। क्योंकि जो अपमान से डरता और मान की इच्छा करता है, वह प्रशंसक होकर मिथ्यावादी और पतित हो जाता है। इसलिए चाहे निन्दा, चाहे प्रशंसा, चाहे मान, चाहे अपमान, चाहे जीना, चाहे मृत्यु, चाहे हानि, चाहे लाभ हो, चाहे कोई प्रीति करे, चाहे वैर बाँधे, चाहे अन्न-वस्त्र उत्तम स्थान न मिले वा मिले, चाहे शीत-उष्ण कितना ही क्यों न हो, इत्यादि सबका सहन करे और अधर्म का खण्डन तथा धर्म का मण्डन सदा करता है।

अत्येष्टि संस्कार

अर्थ–अन्त्येष्टि संस्कार वह कर्म है जो शरीर के अन्त में होता है। जिसके आगे शरीर के लिए कोई भी अन्य संस्कार नहीं है। इसी को नरमेध, पुरुषमेध, नरयाग, पुरुषयाग भी कहते हैं।

अन्त्येष्टि के तीसरे दिन मृतक का कोई सम्बन्धी श्मशान में जाकर चिता से अस्थि उठाके उस श्मशान भूमि में कही पृथक रख दे। इस प्रकार मृतक के दाहकर्म और बाद में 'अस्थि संचयन' के बाद दूसरा कोई भी क्रिया कर्म नहीं करना चाहिए। स्वामीजी ने अन्त्येष्टि कर्म की समाप्ति में एक बहुत ही महत्वपूर्ण बात यह लिखी है।

"हाँ, यदि वह सम्पन्न हो तो अपने जीते जी, वा मेरे पीछे उसके सम्बन्धी वेद-विद्या, वेदोक्तधर्मप्रचार, अनाथपालन, वेदोक्त धर्मोपदेश की प्रवृत्ति के लिए चाहे जितना धन प्रदान करे, बहुत अच्छी बात है।"

हिन्दू संन्यासियों में अग्निदाह की प्रथा समाप्त होने का कारण मनुस्मृति के निम्न श्लोक का गलत अर्थ लेना है–

अनग्निरनिकेतः स्याद् ग्राममन्नार्थमाश्रेयत्।
उपेक्षकोऽसङ्कुसुको मुनिर्भावसमाहितः॥ मनुस्मृति 6/23

इस श्लोक में संन्यासी को 'अनग्नि' कहा गया है। जिसका तात्पर्य आहवनीयादि अग्नियों से रहित होना है न कि अन्त्येष्टि के दाहकर्म से विलग होना।

स्वामीजी ने इस श्लोक को संस्कारविधि में उद्धृत करते हुए टिप्पणी में यह लिखा है–"इसी पद से भ्रान्ति में पड़कर संन्यासियों का दाह नहीं करते और संन्यासी लोग अग्नि नहीं छूते, यह पाप संन्यासियों के पीछे लग गया। वहाँ आहवनीयादि संज्ञक अग्नियों को छोड़ना है, स्पर्श या दाहकर्म छोड़ना नहीं है।"

इतिहास की अमर गाथा

–डॉ विवेक आर्य

आर्यसमाज के इतिहास में अनेक प्रेरणादायक संस्मरण हैं जो अमर गाथा के रूप में सदा-सदा के लिए प्रेरणा देते रहेंगे। एक ऐसी ही गाथा रोपड़ के लाला सोमनाथ जी की है। आप रोपड़ आर्यसमाज के प्रधान थे। आपके मार्गदर्शन में रोपड़ आर्यसमाज ने रहतियों की शुद्धि की थी। यूँ तो रहतियों का सम्बन्ध सिख समाज से था मगर उनके साथ अछूतों सा व्यवहार किया जाता था। आपके शुद्धि करने पर रोपड़ के पौराणिक समाज ने आर्यसमाज के सभी परिवारों का बहिष्कार कर दिया एवं रोपड़ के सभी कुओं से आर्यसमाजियों को पानी भरने पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया। आखिर में नहर के गंदे पानी को पीने से अनेक आर्यों को पेट के रोग हो गए जिनमें से एक सोमनाथ जी की माता जी भी थी। उन्हें आन्त्रज्वर (Typhoid) हो गया था।

वैद्य जी के अनुसार ऐसा गन्दा पानी पीने से हुआ था। सोमनाथ जी के समक्ष अब एक रास्ता तो क्षमा मांगकर समझौता करने का था और दूसरा रास्ता सब कुछ सहते हुए परिवार की बलि देने का था। आपको चिंताग्रस्त देखकर आपकी माताजी ने आपको समझाया कि एक न एक दिन तो उनकी मृत्यु निश्चित है फिर उनके लिए अपने धर्म का परित्याग करना गलत होगा। इसलिए धर्म का पालन करने में ही भलाई है। सोमनाथ जी माता का आदेश पाकर चिंता से मुक्त हो गए एवं और अधिक उत्साह से कार्य करने लगे। उधर माता जी रोग से स्वर्ग सिधार गईं। तब भी विरोधियों के दिल नहीं पिघले। विरोध दिनों-दिन बढ़ता ही गया। इस विरोध के पीछे गोपीनाथ पंडित का हाथ था। वह पीछे से पौराणिक हिन्दुओं को भड़का रहा था। सनातन धर्म गजट में गोपीनाथ ने अक्टूबर 1900 के अंक में आर्यों के खिलाफ ऐसा

भड़काया कि आर्यों के बच्चे तक प्यास से तड़पने लगे थे। सख्त से सख्त तकलीफ़ें आर्यों को दी गईं। लाला सोमनाथ को अपना परिवार रोपड़ से जालंधर लेकर जाना पड़ा। जब शांति की कोई आशा न दिखाई दी तो महाशय इंदरमन आर्य लाल सिंह (जिन्हें शुद्ध किया गया था) और लाला सोमनाथ स्वामी श्रद्धानन्द (तब मुंशीराम जी) से मिले और सनातन गजट के विरुद्ध फौजदारी मुकदमा करने के विषय में उनसे राय माँगी। मुंशीराम जी उस काल तक अदालत में धार्मिक मामलों को लेकर जाने के विरुद्ध थे। कोई और उपाय न देख अंत में मुकदमा दायर हुआ जिस पर सनातन धर्म गजट ने 15 मार्च 1901 के अंक में आर्यसमाज के विरुद्ध लिखा "हम रोपड़ी आर्यसमाज का इस छेड़खानी के आगाज़ के लिए धन्यवाद अदा करते हैं कि उन्होंने हमें विधिवत अदालत के द्वारा ऐलानिया जालंधर में हमें निमंत्रण दिया है। जिसको मंजूर करना हमारा कर्तव्य हैं।"

3 सितम्बर 1901 को मुकदमा सोमनाथ बनाम सीताराम रोपड़ निवासी का फैसला भी आ गया। सीताराम अपराधी ने बड़े जज से माफी माँगी। उसने अदालत में माफ़ीनाम पेश किया। "मुझ सीताराम ने लाला सोमनाथ प्रधान आर्यसमाज रोपड़ के खिलाफ छपवाई थी, मुझे ऐसा अफ़सोस से लिखना है कि इसमें आर्यों की तौहीन के खिलाफ बातें दर्ज हो गई थीं। जिससे उनको सख्त नुकसान पहुँचा। इस कारण मैं बड़े अदब (शिष्टाचार) से माफी माँगता हूँ।

मैं लाला साहब के सुशील हालत के लिहाज से ऐसी ही इज्जत करता हूँ जैसा कि इस चिट्ठी के छपवाने से पूर्व करता था। मैं उन्हें बिरादरी से ख़ारिज नहीं समझता, उनके अधिकार साधारण व्यक्तियों सहित वैसे ही समझता हूँ जोकि पहिले थे। मुझे आर्य लोगों से कोई झगड़ा नहीं है। साधारण लोगों को सूचना के वास्ते यह माफीनामा अखबार सत्यधर्म प्रचारक और अखबार पंजाब समाचार लाहौर में और जैन धर्म शरादक लाहौर में प्रकाशित कराता हूँ।"

इस प्रकार से अनेक संकट सहते हुए आर्यों ने दलितोद्धार एवं शुद्धि के कार्य को किया था। मौखिक उपदेश देने में और जमीनी स्तर पर पुरुषार्थ करने में कितना अंतर होता है इसका यह यथार्थ उदाहरण है। सोमनाथ जी की माता जी का नाम इतिहास के स्वर्णिम अक्षरों में अंकित है।

सबसे प्रेरणादायक तथ्य यह है कि किसी स्वर्ण ने अछूतों के लिए अपने प्राण न्योछावर किये हों ऐसे उदाहरण केवल आर्यसमाज के इतिहास में ही मिलते हैं।

अन्य उपलब्ध प्रकाशन

प्रो. उमाकान्त उपाध्याय कृत साहित्य

युगनिर्माता सत्यार्थप्रकाश सन्दर्भ दर्पण	70.00
वेद और स्वामी दयानन्द	40.00
महर्षि दयानंद की देन	30.00
मातृभूमि वैभव	125.00
बंगाल में शास्त्रार्थ	40.00
प्रार्थना प्रवचन	80.00
प्रेरक संस्मरण	50.00
आर्यसमाज परिचय और प्रासंगिकता	15.00
वेद वैभव	150.00
वेद-वन्दन	160.00
वेद-वीथिका	160.00
प्रभात वन्दन	25.00
स्वामी दयानन्द का राजनीतिक दर्शन	50.00

डॉ. सुरेन्द्र कुमार कृत साहित्य

सत्यार्थ प्रकाश दो भागों में	1200.00
महर्षि दयानन्द वर्णित शिक्षा पद्धति	300.00
महर्षि मनु बनाम डॉ. अम्बेडकर	150.00
वैदिक आख्यानों का वैदिक स्वरूप	150.00
मनुस्मृति का पुनर्मूल्यांकन	400.00
हिन्दी काव्यों में वैदिक आख्यान	120.00

विविध विद्वानों का महत्वपूर्ण साहित्य अब उपलब्ध

मानव धर्म शास्त्र का सार	पं. भीमसेन शर्मा	150.00
वैदिक वन्दन	स्वामी ब्रह्ममुनि जी	125.00
धर्म तर्क की कसौटी पर	पं. गंगाप्रसाद उपाध्याय	30.00
अद्वैतवाद	पं. गंगाप्रसाद उपाध्याय	160.00
वैदिक सिद्धान्त विमर्श	पं. गंगाप्रसाद उपाध्याय	25.00
शंकर भाष्यालोचन	पं. गंगाप्रसाद उपाध्याय	150.00
सत्यार्थ प्रकाश दर्शन	सं. आचार्य प्रदीपजी, रेवली	60.00
गीता का रहस्य	सं. आचार्य प्रदीपजी, रेवली	200.00
भास्कर प्रकाश	श्री तुलसीराम स्वामी	200.00
जीवन ज्योति	पं. चमूपति एम.ए.	150.00
युक्तिवाद	पं. लक्ष्मणजी आर्योपदेशक	80.00
वैदिक गीता	प. आर्य मुनि	160.00
दु:खी दिल की पुरदर्द दास्तां	स्वामी श्रद्धानन्द	220.00
श्रीमभगवद्गीता: प्रश्नोत्तरी	कन्हैयालाल आर्य	280.00
Worship	Pt. Ganga Prasad Upadhyaya	100.00
The Marriage Divine	Pt. Dharma Dev Vidhyamartand	20.00
Swami Shraddhanand	Pt. Dharma Dev Vidhyamartand	70.00

जनवरी २०१८ Registered with Regn. of News Paper for India
वेदप्रकाश R.No. 627/57 Regd. No. DL(DG-11)/8030/2015-17, U(DGPO) 01/2015-17
Posted at Delhi RMS, Delhi-110006

चारों वेद-भाष्य (8 भागों में) रु. 5600.00

संपूर्ण वेद भाष्य प्रथम बार कम्प्यूटर द्वारा मुद्रित, शुद्धतम् सामग्री नयनाभिराम छपाई, आकर्षक आवरण, उत्तम कागज, मजबूत जिल्द, सुन्दर स्पष्ट टाईप, कुल 10440 पृष्ठों में पूर्ण, शब्दार्थ व मन्त्रानुक्रमणिका सहित, आठ खण्डों में प्रस्तुत।

ऋग्वेद (चार भागों में) -महर्षि दयानन्द सरस्वती	**रु. 2800.00**
अथर्ववेद (दो भागों में) -पं. क्षेमकरणदास त्रिवेदी	**रु. 1500.00**
यजुर्वेद (एक भाग में) -महर्षि दयानन्द सरस्वती	**रु. 600.00**
सामवेद (एक भाग में) -पं. रामनाथ वेदालंकार	**रु. 700.00**

Forthcoming Publications

The Original Philosophy of Yoga (The Yogasutras of Patanjali)	Dr. Tulsiram Sharma	Rs. 200.00
Light of Truth	Dr. Chiranjeev Bharadwaj	Rs. 300.00

वर्ष 2017 के नये प्रकाशन

प्यारा ऋषि	**महात्मा आनन्द स्वामी**	**रु. 20.00**
संस्कृत वाक्य प्रबोध	**महर्षि दयानन्द सरस्वती**	**रु. 40.00**
विद्यार्थी जीवन रहस्य	**महात्मा नारायण स्वामी**	**रु. 25.00**
मृत्यु रहस्य	**महात्मा नारायण स्वामी**	**रु. 20.00**
मृत्यु और परलोक	**महात्मा नारायण स्वामी**	**रु. 125.00**
वैदिक मान्यताओं का वैज्ञानिक एवं व्यवहारिक विवेचन-डॉ. राजपाल सिंह		**रु. 75.00**
Shri Satyanarayanavrat Katha	Swami Jagdishwaranand	Rs. 30.00
Aryoddeshya Ratna Mala	Mah. Dayanand Saraswati	Rs. 30.00

वर्ष 2016 के प्रकाशन

शान्ति मंत्र	**डॉ. पूर्ण सिंह डबास**	**रु. 15.00**
धर्म की परिभाषा	**डॉ. पूर्ण सिंह डबास**	**रु. 15.00**
आनन्द रस धारा	**प्रा. राजेन्द्र 'जिज्ञासु'**	**रु. 90.00**
यज्ञ-क्या? क्यों? कैसे?	**श्री मदन रहेजा**	**रु. 35.00**
बाल शंका समाधान	**श्री मदन रहेजा**	**रु. 25.00**
Mystery of Death	**Sh. Madan Raheja**	**Rs. 150.00**

प्राप्ति स्थानः विजयकुमार गोविन्दराम हासानन्द
4408, नई सड़क, दिल्ली-6, दूरभाष 23977216, 65360255
Email: ajayarya16@gmail.com Web: www.vedicbooks.com